पाण्डियन रोडवेज कॉर्पोरेशन लि. का प्रबंधन

बनाम

एन. बालकृष्णन

15 मई, 2007

[एस.बी. सिन्हा तथा मार्कण्डेय काटजू, न्यायमूर्तिगण]

श्रम विधियाँ :

कदाचार — विभागीय कार्यवाही तथा आपराधिक कार्यवाही — विभागीय कार्यवाही में अधिरोपित दंड पर आपराधिक कार्यवाही में दोषमुक्ति का प्रभाव — इस क्षेत्र में कार्यरत उच्चतम न्यायालय के निर्णयों की दो धाराएँ — विवेचित।

पदच्युति — कामगार के विरुद्ध चोरी के आरोप — उत्तरदाता — उसके विरुद्ध विभागीय कार्यवाही तथा आपराधिक कार्यवाही प्रारंभ की गई — विभागीय कार्यवाही में उत्तरदाता दोषी पाया गया तथा तत्पश्चात् सेवा से पदच्युत कर दिया गया — नियोक्ता-निगम के प्रमाणित स्थायी आदेश के अनुपालन न होने के आधार पर श्रम न्यायालय द्वारा धारा 33(2)(बी) के अधीन पदच्युति अनुमोदित नहीं की गई — तत्पश्चात् उत्तरदाता को पुनः सेवा में ले लिया गया तथा तब से वह सेवा में निरंतर कार्यरत है — अभिनिर्धारित : प्रश्नगत स्थायी आदेश यद्यपि आदेशात्मक प्रकृति का था, तथापि किसी प्रदत्त परिस्थिति में उससे विचलन किया जा सकता था — तथापि एक अन्य पक्ष भी है — इस बीच उत्तरदाता आपराधिक कार्यवाही में दोषमुक्त हो चुका था — इसके अतिरिक्त, वह केवल श्रेणी-IV का कर्मचारी था तथा उस पर आपराधिक न्यासभंग का आरोप नहीं लगाया गया था — परिस्थितियों में संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन असाधारण क्षेत्राधिकार के प्रयोग का कोई मामला निर्मित नहीं होता — औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 — धारा 33(2)(बी) — भारत का संविधान — अनुच्छेद 136

विधियों का निर्वचन — सांविधिक उपबंध सारभूत अथवा प्रक्रियात्मक हो सकता है — यदि वह सारभूत है, तो अधिनियम में निहित अपेक्षाओं का सामान्यतः

अनुपालन किया जाना चाहिए — तथापि, जब उपबंध प्रक्रियात्मक विषय से संबंधित हो, तब उसका पर्याप्त अनुपालन उद्देश्य की पूर्ति करेगा।

उत्तरदाता अपीलकर्ता-निगम में श्रेणी-IV का कर्मचारी है। उसके विरुद्ध चोरी के आरोप लगाए गए, जिसके अनुसरण में विभागीय तथा आपराधिक दोनों प्रकार की कार्यवाहियाँ प्रारंभ की गईं। विभागीय कार्यवाही में उत्तरदाता दोषी पाया गया तथा तत्पश्चात् उसे सेवा से पदच्युत कर दिया गया।

अपीलकर्ता ने औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 की धारा 33(2)(बी) के अधीन पदच्युति आदेश के अनुमोदन हेतु आवेदन प्रस्तुत किया, किन्तु श्रम न्यायालय द्वारा अनुमोदन इस आधार पर प्रदान नहीं किया गया कि उक्त पदच्युति आदेश पारित करते समय अपीलकर्ता-निगम के प्रमाणित स्थायी आदेशों के खंड 17(5) का अनुपालन नहीं किया गया था। इस बीच उत्तरदाता के विरुद्ध प्रारंभ की गई आपराधिक कार्यवाही उसके दोषमुक्ति के साथ समाप्त हुई। अपीलकर्ता द्वारा दायर रिट याचिका उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश द्वारा स्वीकृत कर ली गई। उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने एकल न्यायाधीश के आदेश को अपास्त कर दिया। अतः वर्तमान अपील।

अपील निरस्त करते हुए, न्यायालय ने

अभिनिर्धारित : 1.1. निगम के स्थायी आदेशों के खंड 17(5) के साधारण पठन से तथा विशेषकर इस तथ्य को दृष्टिगत रखते हुए कि उसमें "करेगा" शब्द का प्रयोग किया गया है, *प्रथमदृष्टया* **उसका निर्वचन आदेशात्मक प्रकृति के रूप में किया जाएगा। तथापि, किसी विशेष परिस्थिति में उसे निर्देशात्मक भी माना जा सकता है। इस प्रकार की विधि का निर्वचन करते समय संदर्भ महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। विधि का निर्वचन मामले में विद्यमान तथ्यात्मक परिस्थिति पर भी निर्भर करेगा। तथापि, उक्त नियम के कुछ अपवाद हैं।**

[कंडिका 11 तथा 12] [879-बी, सी, डी]

1.2. इसमें भी कोई संदेह नहीं हो सकता कि सामान्यतः किसी विधि के आदेशात्मक स्वरूप के उल्लंघन से उत्पन्न परिणामों को प्रभाव दिया जाना चाहिए। कोई सांविधिक उपबंध सारभूत अथवा प्रक्रियात्मक हो सकता है। यदि वह सारभूत है, तो

अधिनियम में विनिर्दिष्ट अपेक्षाओं का सामान्यतः अनुपालन किया जाना चाहिए। तथापि, जब उपबंध प्रक्रियात्मक विषय से संबंधित हों, तब उनका पर्याप्त अनुपालन उद्देश्य की पूर्ति करेगा।

[कंडिका 15] [881-जी]

1.3. किसी विधि अथवा विधिक सिद्धांत का अनुप्रयोग मामले-दर-मामले भिन्न हो सकता है। केवल इसलिए कि विधि आदेशात्मक है, यह आवश्यक नहीं कि उससे यह घोषणा हो कि आक्षेपित आदेश शून्य है।

[कंडिका 16 तथा 17] [882-ए]

1.4. सामान्यतः, यद्यपि प्रमाणित स्थायी आदेशों के खंड 17 के उपखंड (5) का अनुपालन अपेक्षित है, तथापि इसका यह अर्थ नहीं कि किसी प्रदत्त परिस्थिति में उससे विचलन नहीं किया जा सकता। ऐसे मामले में जहाँ पदच्युति अथवा सेवा से हटाया जाना सामान्यतः अनुगामी हो, उदाहरणार्थ गम्भीर कदाचार जैसे गबन के मामले में, नियम के कठोर अनुपालन पर बल नहीं दिया जा सकता। ऐसा कहते समय इस विधि से अनभिज्ञ नहीं रहा जा सकता कि कोई कार्यपालिका अभिकरण सामान्यतः उन मानकों से आबद्ध होता है जिनके आधार पर वह अपने कार्यों का मूल्यांकन किए जाने का दावा करता है। किन्तु जहाँ कोई प्रक्रियात्मक उपबंध मात्र नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों को समाहित करता हो, वहाँ यह प्रश्न कि उस सिद्धांत का अनुपालन हुआ है अथवा नहीं, प्रत्येक मामले की तथ्यात्मक परिस्थिति पर निर्भर करेगा।

[कंडिका 19] [882-जी; 883-ए, बी]

यू.पी. राज्य विद्युत बोर्ड बनाम शिव मोहन सिंह एवं एक अन्य, **(2004) एससीसी 402;** *पी.टी. राजन बनाम टी.पी.एम. साहिर एवं अन्य,* **(2003) 8 एससीसी 498;** *अशोक लांका एवं एक अन्य बनाम ऋषि दीक्षित एवं अन्य,* **(2005) 5 एससीसी 598;** *हरजीत सिंह एवं एक अन्य बनाम पंजाब राज्य एवं अन्य,* **(2007) 3 एस.सी.ए.एल.ई. 553;** *स्टेट बैंक ऑफ पटियाला एवं अन्य बनाम एस.के. शर्मा,* **(1996) 3 एससीसी 364;** *अशोक कुमार सोंकर बनाम भारत संघ एवं अन्य,* **(2007) 3 एस.सी.ए.एल.ई. 517;** *पंजाब राज्य एवं अन्य बनाम सुखविंदर सिंह,* **(1999) एससीसी (एल&एस) 1234;** *जनता बाजार (साउथ कनारा सेंट्रल को-ऑपरेटिव होलसेल स्टोर्स लि.) एवं अन्य बनाम सचिव, सहकारी नौकरारा*

संघ एवं अन्य, **(2000) 7 एससीसी 517 तथा** *डिविजनल कंट्रोलर, के.एस.आर.टी.सी. (एनडब्ल्यूकेआरटीसी) बनाम ए.टी. माने,* **(2005) 3 एससीसी 254, को निर्दिष्ट किया गया।**

2.1. तथापि, इस मामले का एक अन्य पक्ष भी है जिसे दृष्टि से ओझल नहीं किया जा सकता। इस बीच उत्तरदाता दोषमुक्त हो चुका है। उसकी दोषमुक्ति के तथ्य को उच्च न्यायालय की खंडपीठ द्वारा ध्यान में रखा गया, जिसे एक अतिरिक्त कारक माना गया। सामान्यतः यह प्रश्न कि क्या किसी आपराधिक मामले में दोषमुक्ति, विभागीय कार्यवाही में दोषसिद्ध कर्मचारी पर अधिरोपित दंड आदेश के संबंध में निर्णायक होगी, पुनः प्रत्येक मामले की तथ्यात्मक परिस्थिति पर निर्भर करेगा।

[कंडिका 21] [883-डी-ई]

2.2. स्पष्टतः इस क्षेत्र में इस न्यायालय के निर्णयों की दो धाराएँ कार्यरत हैं। निर्णयों की एक धारा यह प्रदर्शित करती है कि आपराधिक मामले में सम्मानपूर्वक दोषमुक्ति अपने आप में दोषसिद्ध कर्मचारी पर अधिरोपित दंड आदेश के संबंध में निर्णायक नहीं मानी जा सकती, *अन्य बातों के अलावा* **तब जब : (i) दोषमुक्ति का आदेश समान तथ्यों अथवा समान साक्ष्यों के आधार पर पारित न किया गया हो; (ii) आपराधिक विचारण तथा विभागीय कार्यवाही में प्रमाण के मानदंड के अंतर के प्रभाव पर विचार न किया गया हो; अथवा जहाँ दोषसिद्ध कर्मचारी पर ऐसा आरोप लगाया गया हो जो आपराधिक मामले के विषय-वस्तु से अधिक व्यापक हो और/अथवा जो किसी व्यवहार न्यायालय के निर्णय से आच्छादित हो।**

[कंडिका 22] [883-ई, एफ, जी]

कैप्टन पॉल एंथनी बनाम भारत गोल्ड माइन्स लि. एवं एक अन्य, **[1999] 3 एससीसी 679;** *जी.एम. टैंक बनाम गुजरात राज्य एवं अन्य,* **[2006] 5 एससीसी 446;** *पुलिस आयुक्त, नई दिल्ली बनाम नरेंद्र सिंह,* **[2006] 4 एससीसी 265;** *जी.एम. टैंक बनाम गुजरात राज्य एवं अन्य,* **[2006] 5 एससीसी 446;** *जसबीर सिंह बनाम पंजाब एंड सिंध बैंक एवं अन्य,* **[2006] 11 एस.सी.ए.एल.ई. 204;** *नोएडा एंटरप्राइजेज एसोसिएशन बनाम नोएडा एवं अन्य,* **[2007] 2 एस.सी.ए.एल.ई. 131;** *नरेंद्र मोहन आर्य बनाम यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लि. एवं अन्य,* **[2006] 4 एससीसी 713 तथा** *दिल्ली क्लॉथ एंड जनरल मिल्स कंपनी बनाम गणेश दत्त एवं अन्य,* **[1972] 4 एससीसी 834, को निर्दिष्ट किया गया।**

3. वर्तमान घटना वर्ष 1985 में हुई थी। अधिनियम की धारा 33(2)(बी) के अधीन आवेदन 16.06.1986 को दायर किया गया था। उसे 19.4.1989 के आदेश द्वारा निरस्त कर दिया गया। तत्पश्चात् उत्तरदाता को पुनः सेवा में ले लिया गया और वह सेवा में बना रहा। उत्तरदाता मात्र श्रेणी-IV का कर्मचारी है; वह किसी विश्वासपात्र पद पर आसीन नहीं है। उस पर आपराधिक न्यासभंग का अपराध आरोपित नहीं किया गया था। [कंडिका 25] [885-बी, सी]

4. अब यह विधि का सुस्थापित सिद्धांत है कि यह न्यायालय केवल इसलिए भारत के संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग नहीं करेगा कि ऐसा करना विधिसम्मत हो सकता है। वर्तमान मामला ऐसा उपयुक्त मामला नहीं है जिसमें यह न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन अपने असाधारण क्षेत्राधिकार का प्रयोग करे। [कंडिका 26] [885-डी]

ट्रांसमिशन कॉर्पोरेशन ऑफ ए.पी. लि. बनाम लैंको कोंडापल्ली पावर (प्रा.) लि., **[2006] 5 एससीसी 540 तथा** *चंद्र सिंह एवं अन्य बनाम राजस्थान राज्य एवं एक अन्य,* **[2003] 6 एससीसी 545, पर अवलंबन किया गया।**

दीवानी अपीलीय क्षेत्राधिकार : 2007 की दीवानी अपील सं. 2534

मद्रास उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार द्वारा डब्लू.ए. सं. 2702/1999 में दिनांक 22.3.2006 को पारित निर्णय एवं आदेश से।

अपीलकर्ता की ओर से टी. हरिश कुमार।

उत्तरदाता की ओर से एस. गुरु कृष्ण कुमार तथा एस.आर. सेटिया।

न्यायालय का निर्णय

एस.बी. सिन्हा, न्यायमूर्ति द्वारा प्रदान किया गया। 1. अनुमति प्रदान की गई।

2. यहाँ का उत्तरदाता अपीलकर्ता के कुमुली डिपो में हेल्पर के रूप में नियोजित था। उसके विरुद्ध रु. 37,086.05 की चोरी के कथित अपराध के संबंध में 03.11.1985 को एक आपराधिक परिवाद दायर किया गया। उसके विरुद्ध एक विभागीय कार्यवाही भी प्रारंभ की गई। उसने उक्त आरोप से विभागीय प्राधिकारी तथा आपराधिक न्यायालय दोनों के समक्ष स्वयं को दोषमुक्त बताया। तथापि, विभागीय कार्यवाही में उसे उक्त आरोप का दोषी पाया गया। कारण बताओ नोटिस की तामील किए जाने के पश्चात् ही उसे सेवा से पदच्युत किया गया।

3. अपीलकर्ता ने औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 (संक्षेप में, 'अधिनियम') की धारा 33(2)(बी) के अधीन उक्त पदच्युति आदेश के अनुमोदन हेतु आवेदन दायर किया। अपेक्षित अनुमोदन इस आधार पर प्रदान नहीं किया गया कि उक्त सेवा समाप्ति आदेश पारित करते समय निगम के प्रमाणित स्थायी आदेशों के खंड 17(5) का अनुपालन नहीं किया गया था, जिसके अनुसार प्रबंधन को पदच्युति आदेश पारित करने से पूर्व कर्मचारी के पूर्ववृत्त को ध्यान में रखना आवश्यक था।

4. न्यायाधिकरण के समक्ष उक्त कार्यवाही की लंबितता के दौरान, निर्विवाद रूप से आपराधिक न्यायालय ने उत्तरदाता को रु.37,086.05 की उक्त राशि हटाने के आरोप के अपराध से दोषमुक्त पाया। अतः उसे दोषमुक्त कर दिया गया।

5. अपीलकर्ता द्वारा श्रम न्यायालय के उक्त आदेश को चुनौती देते हुए एक रिट याचिका दायर की गई, जिसे रिट याचिका सं. 1485/1990 के रूप में अंकित किया गया। उक्त न्यायालय के एक विद्वान एकल न्यायाधीश ने रिट याचिका स्वीकार कर ली। उससे व्यथित एवं असंतुष्ट होकर उत्तरदाता ने उच्च न्यायालय की खंडपीठ के समक्ष अपील प्रस्तुत की। आक्षेपित निर्णय द्वारा उक्त अपील इस प्रकार अभिनिर्धारित करते हुए स्वीकार की गई :-

> "14. दुर्भाग्यवश, विद्वान न्यायाधीश ने प्रबंधन के मामले को स्वीकार करते हुए दो त्रुटियाँ कीं। पहली यह कि उन्होंने यह मान लिया कि कामगार के विरुद्ध आरोप गबन से संबंधित है। यह विवादित नहीं है कि प्रबंधन की शिकायत के आधार पर कामगार के विरुद्ध चोरी के अपराध के लिए अभियोजन प्रारंभ किया गया था, जो कि न्यायिक दंडाधिकारी, उत्तमपालयम के अभिलेख पर लंबित सी.सी. सं. 75/1986 में दिनांक 14.10.1987 को

दोषमुक्ति के साथ समाप्त हुआ। दूसरी बात, विद्वान न्यायाधीश ने यह अभिनिर्धारित करने में त्रुटि की कि जब कोई कर्मचारी निधियों के गबन के मामले में संलिप्त हो, तब सेवा से पदच्युति से कम दंड अधिरोपित नहीं किया जा सकता। तथापि, विद्वान न्यायाधीश के अनुसार, जब अपराध की प्रकृति अथवा गंभीरता के आधार पर कोई प्रमुख दंड अधिरोपित किया जाना हो, तब स्थायी आदेशों के खंड 17(5) में उल्लिखित कारकों का कुछ महत्व होता है।"

6. इस प्रकार अपीलकर्ता हमारे समक्ष है।

7. अपीलकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री टी. हरिश कुमार ने प्रस्तुत किया कि निगम के प्रमाणित स्थायी आदेशों के खंड 17(5) को आदेशात्मक प्रकृति का नहीं माना जा सकता। विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, आपराधिक न्यासभंग से संबंधित कदाचार के मामले में नियोक्ता सेवा समाप्ति का दंड अधिरोपित करने में न्यायसंगत होगा और ऐसी स्थिति में कर्मचारी के पूर्व आचरण पर विचार करने का प्रश्न उत्पन्न नहीं होगा।

8. यह तर्क दिया गया कि कर्मचारी के पूर्व आचरण को केवल उसी स्थिति में विचार में लिया जाएगा जब सिद्ध कदाचार गंभीर प्रकृति का न हो। यह भी प्रतिपादित किया गया कि कामगार द्वारा गंभीर कदाचार किए जाने के मामलों में उदारता अथवा सहानुभूति का कोई स्थान नहीं है और मामले का कठोरतापूर्वक निस्तारण किया जाना चाहिए। इस संबंध में *जनता बाजार (साउथ कनारा सेंट्रल को-ऑपरेटिव होलसेल स्टोर्स लि.) एवं अन्य बनाम सचिव, सहकारी नौकरारा संघ एवं अन्य,* [2000] 7 एससीसी 517 तथा *डिविजनल कंट्रोलर, के.एस.आर.टी.सी. (एनडब्ल्यूकेआरटीसी) बनाम ए.टी. माने,* [2005] 3 एससीसी 254, पर भरोसा किया गया।

9. विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि यह ऐसा मामला नहीं था जिसमें उच्च न्यायालय यह विचार कर सकता था कि अधिरोपित दंड सिद्ध कदाचार की तुलना में अत्यधिक असंगत था या नहीं। यह आग्रह किया गया कि अधिनियम की धारा 33(2)(बी) के अधीन याचिका पर विचार करते समय श्रम न्यायालय का क्षेत्राधिकार सीमित था; अतः वह विभागीय कार्यवाही में प्रस्तुत साक्ष्यों का पुनर्मूल्यांकन नहीं कर सकता था। श्री हरिश कुमार ने यह भी प्रस्तुत किया कि आपराधिक कार्यवाही में दोषमुक्ति का भी घरेलू जाँच पर

कोई प्रभाव नहीं हो सकता, क्योंकि आपराधिक कार्यवाही तथा घरेलू जाँच में प्रमाण के मानदंड पूर्णतः भिन्न होते हैं। इस संबंध में *साउथ बंगाल स्टेट ट्रांसपोर्ट कॉर्पोरेशन बनाम सपन कुमार मित्र एवं अन्य,* [2006] 2 एससीसी 584 तथा *एन. सेल्वराज बनाम कुंभकोणम सिटी यूनियन बैंक लि. एवं एक अन्य,* [2006] 9 एससीसी 172, पर प्रबल भरोसा किया गया।

10. दूसरी ओर, उत्तरदाता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री एस. गुरु कृष्ण कुमार ने प्रस्तुत किया कि यह ऐसा मामला नहीं है जिसमें यह न्यायालय भारत के संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन अपने विवेकाधीन क्षेत्राधिकार का प्रयोग करे। यह तर्क दिया गया कि प्रमाणित स्थायी आदेशों का खंड 17(5) स्पष्टतः लागू होता था और दंड अधिरोपित करने से पूर्व उसमें निहित शर्तों पर उनके समष्टिगत प्रभाव को दृष्टिगत रखते हुए विचार किया जाना आवश्यक था। विद्वान अधिवक्ता ने यह भी तर्क दिया कि प्रमाणित स्थायी आदेशों का खंड 17(5) आदेशात्मक प्रकृति का है। यह भी प्रतिपादित किया गया कि निर्विवाद रूप से दंड अधिरोपित करते समय उत्तरदाता के पूर्व आचरण पर विचार नहीं किया गया। यह आग्रह किया गया कि अन्यथा उत्तरदाता का आचरण निष्कलंक था। इस संबंध में हमारा ध्यान इस तथ्य की ओर आकृष्ट किया गया कि श्रम न्यायालय द्वारा अनुमोदन देने से इंकार किए जाने के आदेश के अनुसरण में उत्तरदाता को वर्ष 1989 में पुनः सेवा में ले लिया गया था और तब से वह बैंक में पूर्णतः निष्कलंक सेवा कर रहा है। विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि उच्च न्यायालय की खंडपीठ द्वारा आपराधिक न्यायालय के दोषमुक्ति आदेश को ध्यान में रखा गया था, अतः उसे प्रमाणित स्थायी आदेशों के खंड 17(5) में निहित कारकों के अतिरिक्त एक अतिरिक्त कारक के रूप में माना जाना चाहिए।

11. निगम के स्थायी आदेशों का खंड 17(5) निम्नवत् है :-

> "इस स्थायी आदेश के अधीन दंड अधिरोपित करते समय नियोक्ता कदाचार की गंभीरता, कामगार के पूर्व अभिलेख तथा विद्यमान किसी भी शमनकारी अथवा उग्रकारी परिस्थितियों को ध्यान में रखेगा।"

12. उक्त उपबंध के साधारण पठन से तथा विशेषतः इस तथ्य को दृष्टिगत रखते हुए कि उसमें "करेगा" शब्द का प्रयोग किया गया है, *प्रथमदृष्टया* इसे आदेशात्मक

प्रकृति का माना जाएगा। तथापि, कुछ परिस्थितियों में इसे निर्देशात्मक माना जा सकता है। इस प्रकार की विधि की व्याख्या करते समय संदर्भ महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। किसी विधि की व्याख्या उस मामले में विद्यमान तथ्यात्मक परिस्थिति पर भी निर्भर करेगी। तथापि, उक्त नियम के कुछ अपवाद हैं। यह प्रश्न इस न्यायालय के समक्ष *यू.पी. राज्य इलेक्ट्रिसिटी बोर्ड बनाम शिव मोहन सिंह एवं एक अन्य,* [2004] 8 एससीसी 402 में विचारार्थ आया था, जिसमें *अन्य बातों के साथ* यह अवलोकित किया गया :-

> "96. सामान्यतः यद्यपि 'करेगा' शब्द को आदेशात्मक प्रकृति का माना जाता है, तथापि यदि संदर्भ अथवा आशय अन्यथा अपेक्षा करे तो उसकी व्याख्या निर्देशात्मक के रूप में की जानी चाहिए। (देखें *सैनिक मोटर्स बनाम राजस्थान राज्य,* ए.आई.आर. कंडिका)
>
> 97. यह ध्यान देने योग्य है कि *क्रॉफर्ड ऑन स्टैच्यूटरी कंस्ट्रक्शन,* पृष्ठ 539 पर यह कहा गया है :-
>
> 271. *आदेशात्मक विधियों की आवश्यकताओं से विविध निहित अपवाद, सामान्यतः* यद्यपि कोई विधि स्पष्टतः आदेशात्मक अथवा निषेधात्मक हो, तथापि अनेक उदाहरणों में न्यायालय विभिन्न उपायों अथवा सिद्धांतों के प्रयोग द्वारा कुछ आचरण को उस विधि के निषेध के बाहर मानेंगे। इन सभी उपायों का औचित्य, यदि सभी का नहीं तो अधिकांश का, न्याय के विचारों में निहित है। यह सर्वविदित तथ्य है कि प्रायः विधि को उसके अक्षरशः रूप में प्रवर्तित करने से प्रत्यक्ष अन्याय उत्पन्न होता है, क्योंकि अनेक बार साम्यिक तथा मानवीय विचार, और उनसे निकटता से संबंधित अन्य विचार, विधि के तकनीकी उल्लंघन को क्षमा अथवा न्यायोचित ठहराने के लिए पर्याप्त महत्व के प्रतीत होते हैं।
>
> ....
>
> 105. केवल इसलिए कि धारा 4 की उपधारा (4) में 'करेगा' शब्द का प्रयोग किया गया है, इसे आदेशात्मक प्रकृति का नहीं माना जा सकता, इस तथ्य को दृष्टिगत रखते हुए कि, जैसा कि पूर्वोक्त अवलोकित किया गया है, न केवल

शिक्षुता अनुबंध प्रारंभ होता है, बल्कि शिक्षुता अनुबंध के पंजीकरण हेतु आवेदन भी शिक्षुता नियम, 1992 के नियम 4-बी के अनुसार तीन माह की अवधि के भीतर किया जाना आवश्यक है। अधिनियम कहीं भी अपंजीकरण के परिणाम का प्रावधान नहीं करता।

....

109. अब यह विधि का सुस्थापित सिद्धांत है कि यदि किसी विधि में प्रयुक्त भाषा एक से अधिक व्याख्याओं को ग्रहण करने में सक्षम हो, तो उसके वास्तविक अर्थ का चयन वैकल्पिक व्याख्याओं को अपनाने से उत्पन्न परिणामों को दृष्टिगत रखते हुए किया जाना चाहिए। ऐसी व्याख्या जिससे कठिनाई उत्पन्न हो अथवा जिस उद्देश्य के लिए विधि प्रवर्तित की गई है उसकी पूर्ति न हो, उसे अस्वीकार किया जाना चाहिए और ऐसी व्याख्या दी जानी चाहिए जिससे ऐसे परिणामों से बचा जा सके।”

13. पुनः, *पी.टी. राजन बनाम टी.पी.एम. साहिर एवं अन्य*, [2003] 8 एससीसी 498 में इस न्यायालय ने अवलोकित किया :-

“45. जैसा कि सर्वविदित है, किसी विधि को उसके पाठ एवं संदर्भ में पढ़ा जाना चाहिए। कोई विधि निर्देशात्मक है अथवा आदेशात्मक, यह केवल 'करेगा' या 'हो सकता है' शब्दों के प्रयोग पर निर्भर नहीं करेगा। ऐसे प्रश्न को उस उद्देश्य एवं प्रयोजन को दृष्टिगत रखते हुए पूछा और उत्तरित किया जाना चाहिए जिसकी प्राप्ति वह करना चाहती है।

46. जो आदेशात्मक है वह 1950 अधिनियम की धारा 23 की उपधारा (3) की आवश्यकता है, न कि प्रपत्र 16 के वास्तविक प्रकाशन की मंत्रीस्तरीय कार्यवाही।

47. किसी विधि की व्याख्या उसके प्रयोजन एवं उद्देश्य पर निर्भर करेगी जिसके लिए उसका प्रयोग किया गया है। वर्तमान मामले में 1960 के नियम

निर्वाचक नामावली के प्रकाशन हेतु कोई समय निर्धारित नहीं करते। दूसरी ओर, 1950 अधिनियम की धारा 23(3) स्पष्टतः यह अधिदेशित करती है कि नामांकन पत्र दाखिल करने हेतु निर्दिष्ट तिथि तक निर्वाचक नामावली में समावेशन एवं विलोपन के रूप में संशोधन द्वारा पुनरीक्षण के लिए निर्देश जारी किए जा सकते हैं। ऐसे निर्देशों के कारण संशोधित निर्वाचक नामावली में तत्पश्चात् ही संशोधन किया जा सकता है। मतदाता का नाम सम्मिलित करने हेतु दायर आवेदन के संबंध में सक्षम प्राधिकारी द्वारा जारी निर्देश के आधार पर नामांकन दायर किया जा सकता है। अतः संबंधित व्यक्ति को केवल इसलिए असुविधा अथवा प्रतिकूलता नहीं होगी कि प्रपत्र 16 में संशोधित निर्वाचक नामावली कुछ घंटे बाद प्रकाशित की गई। ऐसे नामांकन के दाखिले का परिणाम भी संबंधित पक्षों को अपराह्न 3.00 बजे के पश्चात् ही ज्ञात होगा।

48. इसके अतिरिक्त, यदि विधि निर्वाचक नामावली के प्रकाशन हेतु समय निर्दिष्ट भी करती हो, तब भी मात्र उसी आधार पर उसे आदेशात्मक नहीं माना जा सकता। ऐसा उपबंध निर्देशात्मक प्रकृति का होगा। यह विधि का सुस्थापित सिद्धांत है कि जहाँ किसी वैधानिक प्राधिकारी को निर्धारित समय के भीतर वैधानिक कर्तव्य का पालन करने के लिए कहा जाता है, वहाँ वह निर्देशात्मक होगा, आदेशात्मक नहीं। (देखें *शिवेश्वर प्रसाद सिन्हा बनाम जिला दंडाधिकारी, मुंगेर; नोमिता चौधरी बनाम पश्चिम बंगाल राज्य; तथा गरबरी यूनियन को-ऑपरेटिव एग्रीकल्चरल क्रेडिट सोसायटी लि. बनाम स्वपन कुमार जाना*)

49. इसके अतिरिक्त, किसी विधि का ऐसा उपबंध जो प्रक्रियात्मक प्रकृति का हो, यद्यपि उसमें 'करेगा' शब्द का प्रयोग किया गया हो, तब भी यदि उससे कोई प्रतिकूलता उत्पन्न नहीं होती, तो उसे आदेशात्मक नहीं माना जा सकता। (देखें *रज़ा बुलंद शुगर कंपनी लि. बनाम म्युनिसिपल बोर्ड, रामपुर; स्टेट बैंक ऑफ पटियाला बनाम एस.के. शर्मा; वेंकटस्वामप्पा बनाम विशेष उप आयुक्त (राजस्व); तथा राय विमल कृष्ण बनाम बिहार राज्य*)"

14. *अशोक लंका एवं एक अन्य बनाम ऋषि दीक्षित एवं अन्य,* [2005] 5 एससीसी 598 में यह अभिनिर्धारित किया गया :-

> "53. यह प्रश्न कि कोई विधि आदेशात्मक है अथवा निर्देशात्मक, वैधानिक योजना पर निर्भर करेगा। अब यह सुविदित है कि केवल 'करेगा' या 'हो सकता है' शब्दों का प्रयोग अपने आप में निर्णायक नहीं है। किसी विधि की व्याख्या करते समय न्यायालय को उन सभी प्रासंगिक कारकों पर विचार करना चाहिए जिनमें वह उद्देश्य एवं प्रयोजन भी सम्मिलित हैं जिन्हें विधि प्राप्त करना चाहती है। (देखें *पी.टी. राजन बनाम टी.पी.एम. साहिर तथा यू.पी. एस.ई.बी. बनाम शिव मोहन सिंह)"*

15. इसमें भी कोई संदेह नहीं हो सकता कि सामान्यतः किसी आदेशात्मक प्रकृति की विधि के उल्लंघन से उत्पन्न परिणामों को प्रभावी किया जाना चाहिए। कोई वैधानिक उपबंध मौलिक अथवा प्रक्रियात्मक हो सकता है। यदि वह मौलिक है, तो विधि में निहित आवश्यकताओं का सामान्यतः अनुपालन किया जाना चाहिए। तथापि, जब उपबंध प्रक्रियात्मक विषयवस्तु से संबंधित हों, तब उनका पर्याप्त अनुपालन ही उद्देश्य की पूर्ति करेगा।

16. तथापि, किसी विधि अथवा विधिक सिद्धांत का अनुप्रयोग मामले-दर-मामले भिन्न हो सकता है।

17. केवल इसलिए कि विधि आदेशात्मक है, आवश्यक नहीं कि उससे यह घोषणा हो कि आक्षेपित आदेश अस्तित्वहीन है।

18. *स्टेट बैंक ऑफ पटियाला एवं अन्य बनाम एस.के. शर्मा,* [1996] 3 एससीसी 364 में इस न्यायालय ने *अन्य बातों के साथ* निम्न प्रकार से विधि प्रतिपादित की :-

> "33. उपर्युक्त चर्चा से उद्भूत सिद्धांतों का हम संक्षेप में उल्लेख कर सकते हैं। (इनका उद्देश्य किसी प्रकार से संपूर्ण होना नहीं है और इन्हें विभागीय जाँचों

तथा नियोक्ता द्वारा कर्मचारी पर अधिरोपित दंडादेशों के संदर्भ को दृष्टिगत रखते हुए विकसित किया गया है) :

....

> (4)(ए) ऐसे प्रक्रियात्मक उपबंध के मामले में जो आदेशात्मक प्रकृति का नहीं है, उल्लंघन की शिकायत का परीक्षण पर्याप्त अनुपालन के दृष्टिकोण से किया जाना चाहिए। तथापि, ऐसे उपबंध के उल्लंघन में पारित आदेश को केवल उसी स्थिति में अपास्त किया जा सकता है जब ऐसे उल्लंघन से दोषारोपित कर्मचारी को प्रतिकूलता हुई हो।
>
> (बी) ऐसे प्रक्रियात्मक उपबंध के उल्लंघन के मामले में जो आदेशात्मक प्रकृति का है, यह ज्ञात किया जाना चाहिए कि वह उपबंध कार्यवाही का सामना कर रहे व्यक्ति के हित में कल्पित है अथवा लोकहित में। यदि यह पाया जाए कि वह पूर्ववर्ती प्रकार का है, तब यह देखा जाना चाहिए कि क्या दोषारोपित अधिकारी ने उक्त आवश्यकता का त्याग किया है, चाहे स्पष्ट रूप से अथवा अपने आचरण द्वारा। यदि यह पाया जाए कि उसने उसका त्याग कर दिया है, तब उक्त उल्लंघन के आधार पर दंडादेश को अपास्त नहीं किया जा सकता। दूसरी ओर, यदि यह पाया जाए कि दोषारोपित अधिकारी/कर्मचारी ने उसका त्याग नहीं किया है अथवा वह उपबंध उसके द्वारा त्याग योग्य नहीं था, तब न्यायालय अथवा अधिकरण को उपयुक्त निर्देश पारित करने चाहिए (जिसमें दंडादेश को अपास्त करना भी सम्मिलित है), संवैधानिक पीठ द्वारा *बी. करुणाकर* 18 में अपनाए गए दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए। अंतिम परीक्षण सदैव एक ही होता है, *अर्थात्* प्रतिकूलता का परीक्षण अथवा निष्पक्ष सुनवाई का परीक्षण, जैसा भी उसे कहा जाए।"

19. सामान्यतः, यद्यपि प्रमाणित स्थायी आदेशों के खंड (17) के उपखंड (5) का अनुपालन किया जाना आवश्यक है, तथापि हमारे मत में इसका अर्थ यह नहीं होगा कि किसी विशेष परिस्थिति में उससे कोई विचलन नहीं हो सकता। ऐसे मामले में जहाँ सेवा से पदच्युति अथवा पदमुक्ति सामान्यतः अनुगामी होनी हो, उदाहरणार्थ गबन जैसे गंभीर कदाचार

के मामले में, नियम के कठोर प्रवर्तन पर आग्रह नहीं किया जा सकता। ऐसा कहते समय हम इस विधि से अनभिज्ञ नहीं हैं कि कोई कार्यपालिका अभिकरण सामान्यतः उन मानकों से आबद्ध होता है जिनके आधार पर वह अपने कार्यों का मूल्यांकन किए जाने का दावा करता है। [देखें *हरजीत सिंह एवं अन्य बनाम पंजाब राज्य एवं अन्य*, [2007] 3 एस.सी.ए.एल.ई. 553]। किन्तु जहाँ कोई प्रक्रियात्मक उपबंध केवल नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों को समाहित करता हो, वहाँ *स्टेट बैंक ऑफ पटियाला* (उपरोक्त) में इस न्यायालय के निर्णय को दृष्टिगत रखते हुए यह प्रश्न कि उस सिद्धांत का पालन हुआ है अथवा नहीं, प्रत्येक मामले में विद्यमान तथ्यात्मक परिस्थिति पर निर्भर करेगा। [देखें *अशोक कुमार सोंकर बनाम भारत संघ एवं अन्य*, [2007] 3 एस.सी.ए.एल.ई. 517]।

20. यह उल्लेख करना उपयोगी होगा कि *पंजाब राज्य एवं अन्य बनाम सुखविंदर सिंह*, (1999) एससीसी (एल&एस) 1234 में इस न्यायालय ने यह धारित किया है कि पंजाब पुलिस नियमों के नियम 16.2(1) में प्रयुक्त शब्द "दुराचार का सबसे गंभीर कृत्य" का प्रयोग दंडादेश में किया जाना आवश्यक नहीं है, क्योंकि प्रत्येक मामले में विद्यमान तथ्यात्मक पृष्ठभूमि से इसका निर्धारण किया जा सकता है।

21. तथापि, मामले का एक अन्य पक्ष भी है जिसे दृष्टि से ओझल नहीं किया जा सकता। इस बीच, उत्तरदाता दोषमुक्त कर दिया गया है। उसके दोषमुक्त किए जाने के तथ्य को उच्च न्यायालय की खंडपीठ द्वारा ध्यान में रखा गया, जिसे एक अतिरिक्त कारक माना गया। सामान्यतः, यह प्रश्न कि किसी आपराधिक मामले में दोषमुक्ति विभागीय कार्यवाही में दोषारोपित अधिकारी पर अधिरोपित दंडादेश के संबंध में निर्णायक होगी या नहीं, पुनः उस विशिष्ट मामले में विद्यमान तथ्यात्मक परिस्थिति पर निर्भर करेगा।

22. इस क्षेत्र में इस न्यायालय के दो प्रकार के निर्णय स्पष्टतः प्रवर्तित हैं। एक प्रकार के मामले वे हैं जो *कैप्टन पॉल एंथनी बनाम भारत गोल्ड माइन्स लि. एवं एक अन्य*, (1999) 3 एससीसी 679 तथा *जी.एम. टैंक बनाम गुजरात राज्य एवं अन्य*, (2006) 5 एससीसी 446 के दायरे में आते हैं। तथापि, दूसरे प्रकार के निर्णय यह प्रदर्शित करते हैं कि आपराधिक मामले में सम्मानपूर्वक दोषमुक्ति अपने आप में दोषारोपित अधिकारी पर अधिरोपित दंडादेश के संबंध में निर्णायक नहीं मानी जा सकती, *अन्य बातों के साथ* जब : (i) दोषमुक्ति का आदेश समान तथ्यों अथवा समान साक्ष्यों के आधार पर पारित न किया

गया हो; (ii) आपराधिक विचारण तथा विभागीय कार्यवाही में प्रमाण के मानक के अंतर के प्रभाव पर विचार न किया गया हो। [देखें *पुलिस आयुक्त, नई दिल्ली बनाम नरेंद्र सिंह,* [2006] 4 एससीसी 265] अथवा जहाँ दोषारोपित अधिकारी पर ऐसा आरोप हो जो आपराधिक मामले के विषय-वस्तु से अधिक हो और/अथवा जो व्यवहार न्यायालय के निर्णय से आच्छादित हो। [देखें *जी.एम. टैंक* (उपरोक्त), *जसबीर सिंह बनाम पंजाब एंड सिंध बैंक एवं अन्य,* [2006] 11 एस.सी.ए.एल.ई. 204 तथा *नोएडा एंटरप्राइजेज एसोसिएशन बनाम नोएडा एवं अन्य,* [2007] 2 एस.सी.ए.एल.ई. 131 [कंडिका 18]

23. *नरेंद्र मोहन आर्य बनाम यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लि. एवं अन्य,* [2006] 4 एससीसी 713 में इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया :-

> "39. कुछ परिस्थितियों में, व्यवहार न्यायालय का निर्णय आपराधिक न्यायालय पर भी बाध्यकारी होता है, यद्यपि इसका विपरीत सत्य नहीं है। (देखें *करमचंद गंगा प्रसाद बनाम भारत संघ*)। तथापि, यह भी सत्य है कि आपराधिक मामले तथा दीवानी मामले में प्रमाण का मानक भिन्न होता है।
>
> 40. हम यह उल्लेख कर सकते हैं कि *कैप्टन एम. पॉल एंथनी बनाम भारत गोल्ड माइन्स लि.* में इस न्यायालय ने अवलोकित किया :- (एससीसी पृष्ठ 695, कंडिका 35)
>
> > "35. चूँकि दोनों कार्यवाहियों, अर्थात् विभागीय कार्यवाही तथा आपराधिक मामले, में तथ्य एवं साक्ष्य समान थे और उनमें किंचितमात्र भी अंतर नहीं था, इसलिए वह भेद, जो सामान्यतः विभागीय कार्यवाही एवं आपराधिक मामले के मध्य दृष्टिकोण तथा प्रमाण के भार के आधार पर किया जाता है, वर्तमान मामले में लागू नहीं होगा।"
>
> 41. हमें इस प्रकार न समझा जाए कि हमने यह विधि प्रतिपादित की है कि प्रत्येक ऐसी परिस्थिति में व्यवहार न्यायालय अथवा आपराधिक न्यायालय का निर्णय विभागीय प्राधिकारियों पर बाध्यकारी होगा, क्योंकि इस न्यायालय ने

अनेक निर्णयों में यह इंगित किया है कि यह अन्य कारकों पर भी निर्भर करेगा। उदाहरणार्थ देखें *कृष्णकली टी एस्टेट बनाम अखिल भारतीय चाय मजदूर संघ तथा रिज़र्व बैंक ऑफ इंडिया के प्रबंधक बनाम एस. मणि*। अतः प्रत्येक मामले पर उसके अपने तथ्यों के आधार पर विचार किया जाना आवश्यक है।"

24. *दिल्ली क्लॉथ एंड जनरल मिल्स कंपनी बनाम गणेश दत्त एवं अन्य,* [1972] 4 एससीसी 834 में इस न्यायालय ने कहा :-

> "31. श्री शर्मा ने हमारा ध्यान अपीलकर्ता कंपनी के प्रमाणित स्थायी आदेशों के कंडिका 40, प्रदर्श-एम-4 की ओर आकर्षित किया, जिसके अनुसार कामगार को पदच्युत करने का निर्णय लेते समय अपीलकर्ता कंपनी ने, जैसा कि वह करने के लिए बाध्य थी, कामगार के पूर्व अभिलेख, यदि कोई हों, पर विचार नहीं किया। यह तर्क स्वीकार नहीं किया जा सकता, क्योंकि 9 मई, 1966 के आदेश में, जो प्रत्येक कामगार को संप्रेषित किया गया था, अंतिम से पूर्ववर्ती कंडिका में यह कहा गया है कि कर्मचारियों को कदाचार के कारण सेवा से पदच्युत करने का निर्णय लेते समय सेवा के पूर्व अभिलेख सहित सभी प्रासंगिक परिस्थितियों पर पूर्णतः विचार किया गया है। जहाँ तक हम देख सके, कामगारों द्वारा यह कोई चुनौती नहीं दी गई कि अपीलकर्ता ने उसके पूर्व अभिलेख पर विचार नहीं किया।"

25. तथापि, हमारा मत है कि यह ऐसा उपयुक्त मामला नहीं है जिसमें यह न्यायालय भारत के संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन अपने अत्यंत असाधारण क्षेत्राधिकार का प्रयोग करे। उत्तरदाता को वर्ष 1989 में पुनः सेवा में ले लिया गया था। घटना वर्ष 1985 में घटित हुई थी। अधिनियम की धारा 33(2)(बी) के अधीन आवेदन 16.06.1986 को दायर किया गया था। उसे 19.4.1989 के आदेश द्वारा अस्वीकृत कर दिया गया। तत्पश्चात् उत्तरदाता को पुनः सेवा में ले लिया गया। इस तथ्य के बावजूद कि अपीलकर्ता द्वारा दायर रिट याचिका 08.10.1999 को स्वीकृत कर ली गई थी, खंडपीठ द्वारा पारित स्थगन के अंतरिम आदेश के कारण वह सेवा में बना रहा। आक्षेपित निर्णय द्वारा, जैसा कि पूर्वोक्त उल्लेखित है, खंडपीठ ने विद्वान एकल न्यायाधीश के निर्णय को अपास्त कर दिया।

उत्तरदाता मात्र श्रेणी-IV का कर्मचारी है; वह किसी विश्वास-पद पर आसीन नहीं है। उस पर आपराधिक न्यासभंग का आरोप नहीं लगाया गया था।

26. अतः, अब यह विधि का सुस्थापित सिद्धांत है कि यह न्यायालय भारत के संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग केवल इसलिए नहीं करेगा कि ऐसा करना विधिसम्मत हो सकता है। [देखें *ट्रांसमिशन कॉरपोरेशन ऑफ ए.पी. लि. बनाम लैंको कोंडापल्ली पावर (पी) लि.* [2006] 5 एससीसी 540 तथा *चंद्र सिंह एवं अन्य बनाम राजस्थान राज्य एवं एक अन्य,* [2003] 6 एससीसी 545]।

27. उपर्युक्त कारणों से, अपील खारिज की जाती है। तथापि, मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों में, व्यय के संबंध में कोई आदेश नहीं होगा।

बी.बी.बी. अपील खारिज।

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नहीं किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।